1

क्या हम यीशु के विषय में कुछ ''जान'' सकते हैं?

कोई पूछ सकता है, ''क्या हम सचमुच यीशु के बारे में कुछ 'जान' सकते हैं?''; ''क्या यीशु की एक व्याख्या दूसरी व्याख्या की तरह ही मान्य नहीं है?'' आइए अपने सवाल को स्पष्ट करते हैं। हमारा सवाल है कि ''इतिहास से हम यीशु के विषय में क्या जान सकते हैं?'' यानी ''हमारी सहायता के लिए कैसी जानकारी उपलब्ध है?''

उसके विषय में सच्चाई को पहचाना जा सकता है

संदेहवादी इस बात से इनकार करते हैं कि हम सचमुच कुछ जान सकते हैं क्योंकि उनका मानना है कि ''यथार्थ वास्तविकता'' जैसी कोई चीज़ नहीं होती। आइए यह दावा करते हुए आरम्भ करते हैं कि हम यीशु के विषय में कुछ जान सकते हैं। उसके विषय में ''यथार्थ वास्तविकता'' जैसी कोई चीज़ है।

वास्तविकता का यथार्थ विचार यह है कि कुछ चीज़ें सर्वमान्य रूप में सच और जानने योग्य होती हैं। उनमें तीन मुख्य विशेषताएं होती हैं:

(1) *सच्चाई या वास्तविकता, वही है जो है–चाहे इसके बारे में व्यक्ति की अवधारणा जो भी हो।* अन्य शब्दों में, जो सच है वह सच है, आपको यह सच लगे या नहीं। उदाहरण के लिए, जुलाई 20, 1969 के दिन नील आर्मस्ट्रॉन्ग का चांद पर चलने वाला सबसे पहला व्यक्ति बनना, वह घटना थी, जिसे आधुनिक तकनीक की शानदार उपलब्धि के रूप में विश्वभर में जश्न के रूप में मनाया गया। बेशक, अधिकतर लोग इस घटना के वास्तविक होने को मानते हैं, पर कुछ लोग हैं जो नहीं मानते कि ऐसा कभी हुआ होगा। 1976 तक कुछ किताबों में दावा किया जाने लगा कि यह घटना वास्तव में एक सोचा समझा मज़ाक था। षड्यंत्र की थ्योरी बताने वाले लोग यह दावा करते हैं कि किसी के लिए भी वैज्ञानिक रूप में चांद के ऊपर चलना असम्भव है और चांद पर पहली बार चलने के फोटो स्पष्ट रूप से जाली हैं और यहां तक कि वे काल्पनिक दुर्घटनाएं, जो उसके बाद के वर्षों में अन्तरिक्ष यात्रियों के जीवनों में हुईं, वास्तव में वे उनसे पीछा छुड़ाने के लिए जो लोग पूरी कहानी को सच बताने की धमकी दे रहे थे, हत्याएं थीं। समान विचार के लोगों का एक अन्तरराष्ट्रीय संगठन यह मानता है कि चांद पर चलने की घटना एक छल था, जिसे अमेरिकी सरकार द्वारा बड़ी चलाकी से बताया गया था।

हमारा उद्देश्य यह बहस करना नहीं है कि नील आर्मस्ट्रॉन्ग चांद के ऊपर चला या नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि वह चांद के ऊपर चला तो लोगों को जो चाहे लगता रहे या वे जो चाहे कहें, पर सच सही है कि वह चला। यदि वह चांद पर नहीं चला तो हम में से कोई चाहे कुछ भी सोचे, पर वह घटना जिसकी खबर दी गई थी, कभी हुई नहीं थी। यही यथार्थवाद है।

(2) *सच्चाई या वास्तविकता का समर्थन प्रमाण से होता है।* यदि कोई बात यथार्थ रूप में

सच है, तो इसे समर्थन देने वाले लोग इसके पक्ष में प्रमाण दे सकते हैं। ये प्रमाण इसके तर्कसंगत होने और/या सम्भव होने के सम्बन्ध में तवाहों, दस्तावेज़ों या तर्कों के रूप में हो सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रमाण आवश्यक रूप से हर किसी के मानने के लिए है, बल्कि कुछ प्रमाण उस दावे के समर्थन के लिए रहते हैं। आर्मस्ट्रॉन्ग के चांद पर चलने के मामले में, दस्तावेज़, फिल्म और उन लोगों की गवाही है, जिन्होंने उस प्रोजेक्ट में काम किया है। स्वाभाविक है कि उनकी गवाही की वैधता को परखा जाना चाहिए, पर यह विचार कि इसे परखा जा सकता है, उस वास्तविकता के यथार्थ विचार का तर्क देता है।

(3) *संकेत से, वास्तविकता (सच्चाई) के विरोध में जो भी बात हो वह अवश्य गलत है।* दो विपरीत दावे होने पर दोनों सच नहीं हो सकते, कम से कम तब तो बिल्कुल नहीं, जब हम ऐतिहासिक घटनाओं की बात कर रहे हों। यदि आर्मस्ट्रांग चांद पर चला, तो यह कहना गलत है कि वह नहीं चला। यदि वह चांद पर नहीं चला तो यह कहना गलत है कि वह चला। वह चला और नहीं चला, दोनों सही नहीं हो सकते।

तब इस सब का यीशु से क्या वास्ता? या तो ऐसा कोई व्यक्ति था, या नहीं था। या तो वह था जिसके विषय में प्रमाण कहते हैं कि वह था या वह नहीं था। या तो वह था, जिसके विषय में स्रोतों से पता चलता है कि वह था, या वह नहीं था। यीशु के विषय में विरोधी विचार कभी सत्य नहीं हो सकते। कई विचारों में वास्तविकता की दूसरी बातें हो सकती हैं पर जब यीशु के विषय में विपरीत दावे किए जाते हों, तो उनमें से एक या अधिक गलत हैं।[1]

उसके विषय में ऐतिहासिक परिणाम को जांचा जा सकता है

यह जानने के लिए कि हम यीशु के विषय में क्या जान सकते हैं, हमें ऐतिहासिक प्रकृति वाले प्रश्न पूछने होंगे। हम जो सोचते या दूसरों से सुनते हैं, केवल उसी से बात नहीं बन सकती। हमें प्रमाण मांगना चाहिए।

कोई पूछ सकता है, ''पर क्या प्रमाण के स्रोत परखे नहीं जाने चाहिए?'' बिल्कुल परखे जाने चाहिए! हम प्रमाण को परखना चाहते हैं और कई मामलों में ऐसा करने में सक्षम भी हैं। हम जो नहीं कर सकते वह नास्तिकवाद है, नास्तिकवाद की एक किस्म है, जो उस प्रमाण को जो वास्तव में है, देखने से इनकार करके, यह कहने को प्राथमिकता देती है कि ''हम यीशु के विषय में कुछ जान नहीं सकते।'' यह बौद्धिक तौर पर बेईमान और सुस्त है!

क्या प्रमाण से हमेशा हमारे विशेष प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है? क्या उसके बावजूद असहमत होने की गुंजाइश नहीं रहती? कोई यह दावा नहीं करेगा कि यीशु के बारे में ऐतिहासिक सवालों का उत्तर देने को कहना और उत्तर ढूंढ़ना हमें वह सब बता देगा, जो हम जानना चाहते हैं या हमारे हर सवाल का जवाब भी देगा। इसी प्रकार ऐतिहासिक पूछताछ से किसी प्रकार हमारी सभी शंकाएं दूर नहीं हो जाएंगी या बिना किसी संदेह के हम मान नहीं जाएंगे कि वास्तव में क्या हुआ या क्या कहा गया। ईमानदार ऐतिहासिक पूछताछ से जो हो सकता है और होगा वह सम्भावना का पता लगाना ही है। अन्य शब्दों में हमारे सवालों के ऐतिहासिक उत्तर ढूंढ़ने से हम प्रमाण के उस ओर इशारा करने की उम्मीद ही कर सकते हैं, जो सम्भव तौर पर हुआ होगा। यीशु के मामले में लोग आम तौर पर पूछते हैं, ''क्या यह सम्भव नहीं है कि यीशु भारत में गया

और वहां उसने पूर्वी रहस्यवाद की शिक्षा प्राप्त की?''; ''क्या यह सम्भव नहीं है कि यीशु का विवाह हुआ और उसके बच्चे थे?'' सीधे ऐतिहासिक परिदृश्य से हम केवल एक ही उत्तर दे सकते हैं, ''बेशक, यह सम्भव है।'' परन्तु वास्तविक प्रश्न ये हैं कि ''क्या यह सम्भावित है कि उसने इनमें से कोई काम किया?''; ''क्या ऐसा कोई प्रमाण है जो यह संकेत देता हो कि उसने ऐसा किया, निरी किसी की अनुमानित धारणाओं या कोरी कल्पना के अलावा?'' नहीं, कोई नहीं है; और नहीं कोई नहीं है।

यीशु पर लोगों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण की कमी आमतौर पर बिना सिर पैर के विचारों का कारण बनती है। बजाय वर्तमान में प्रस्तुत किए जाने वाले विभिन्न सांस्कृतिक चश्मों के द्वारा या अपने विचारों या भावनाओं के चश्मों के द्वारा उसे देखने के, पाठों की यह शृंखला आप को इतिहास के दृष्टिकोण से यीशु पर विचार करने को प्रोत्साहित करने के लिए है,।

बाइबल में उसके बारे में जिस ऐतिहासिक परिणाम को स्वीकारा जा सकता है

यदि आप मसीही हैं तो आप चकित हो सकते हैं कि ''इस चर्चा में विश्वास कहां से आ गया?'' मान्य और महत्वपूर्ण प्रश्न है। मैं एक विश्वासी हूं जिसे ऐसे सवालों का सामना भी करना पड़ा है, इसलिए कृपया मुझे निम्न सुझाव देने की अनुमति दें।

(1) *विश्वास के लिए इतिहास से भयभीत होने वाली कोई बात नहीं है।* यथार्थ वास्तविकता के साथ चलते हुए हमारा ध्यान उस पर होना चाहिए, जो सच है। आपका तो पता नहीं, पर मैं यीशु के विषय में किसी झूठी बात पर विश्वास केवल इसलिए नहीं करना चाहता कि वह आकर्षक या मुझे शांति देने वाली है। यदि ऐतिहासक पड़ताल से मेरी कोई अवधारणा गलत ठहरती है तो मुझे उसे मानना आवश्यक है। मेरा विश्वास दृढ़ और विशुद्ध केवल तभी होगा जब वह कल्पना पर आधारित न होकर वास्तविकता पर आधारित हो जाए।

(2) *सच्चे बाइबल विश्वास का आधार इतिहास है।* पुराने नियम में इस्राएल ने अपनी पहचान उन लोगों के रूप में बनाई, जिन्हें परमेश्वर मिस्र की दासता में से छुड़ाकर लाया था। जिस बात पर उनका विश्वास था वह इस आधार पर थी कि लोगों के रूप में उनके साथ क्या हुआ। इसी प्रकार से, प्रेरितों ने यीशु के संसार में रहने, उसकी मृत्यु व समय और स्थान में उसके मरे हुओं में से जी उठने का प्रचार न केवल एक ''धार्मिक मिथ्या'' के रूप में बल्कि निश्चित रूप में ''पवित्र भावनाओं'' के रूप में किया। किसी विश्वासी के लिए यह जानना आवश्यक है कि क्या हुआ जिससे वह अपने विश्वास को उसके द्वारा सचेत करके आकार दे सके।

(3) *बाइबल अपने आप में विश्वास और इतिहास के मेल करने वाले के रूप में प्रस्तुत करती है।* बाइबल के लेखकों ने केवल ''जैसा हुआ वैसा बताया'' नहीं। उन्होंने जो हुआ उसकी व्याख्या की और जो विश्वासियों के जीवनों के लिए उसका अर्थ था, उसे बताया। नये नियम में सुसमाचार के वृत्तांतों के लेखकों से हम यीशु के कामों की कहानी बताने की ही नहीं बल्कि उसे इस प्रकार से बताने की अपेक्षा कर सकते हैं जिससे हम उसके पीछे चलने को विवश हों। आखिर इसी लिए तो उन्होंने इसे लिखा है, जैसा कि यूहन्ना रचित सुसमाचार में स्पष्ट रूप में इसे स्वीकार किया गया है (यूहन्ना 20:30, 31)। इसका अर्थ यह हुआ कि यीशु के बारे में अपनी

पूछताछ के दौरान विश्वास और इतिहास को मिलाना पूरी तरह से स्वीकार्य है। एक अर्थ में दोनों को न मिलाना असम्भव है। यहां तक कि सबसे ''यथार्थवादी'' इतिहासकार उस कहानी को जो हुआ था इस तरह से बताता है कि वह इसके लिए हमारी अवधारणाओं को आकार देती है।

(4) *किसी भी प्रमाण को किसी सीमा तक मान लेना, विश्वास का कार्य है।* इसका अर्थ केवल इतना है कि हम स्रोतों पर भरोसा करते हैं। उदाहरण के लिए हम में से कुछ लोगों को संदेह है कि जूलियस कैसर (सीज़र) नाम का कोई आदमी था भी या वह प्राचीन रोम में कोई अगुआ था। बेशक हम उससे कभी मिले नहीं या हम ने कभी उसे देखा नहीं पर जाने-अनजाने में हम ने कुछ स्रोतों (जैसे माता-पिता, शिक्षक) को सही मानने का निर्णय ले लिया है। जहां बाइबल की बात आती है वहां भी कई बार ऐसा ही होता है। यदि हम यह निर्णय लेते हैं कि बाइबल भरोसे के योग्य है तो हम यह मान ही लेंगे कि जो कुछ यह यीशु के विषय में कहती है वह सही है और हमारे कुछ सवालों का जवाब देने की अनुमति देंगे। जो इसके बिना हम नहीं दे सकते। यदि हम बाइबल का सूचना के विश्वसनीय स्रोत के रूप में इनकार करते हैं तो हम यीशु के बारे में बाइबल की शिक्षाओं के सम्बन्ध में संदेह करने वाले होंगे और वह कौन था और उसने क्या किया के बारे में दूसरे विचारों को अधिक मानने को तैयार होंगे। सम्भव होने के बारे में सवाल पूछना न भूल जाएं। अगले पाठ में हम देखेंगे कि बाइबल यीशु के विषय में हमारे ज्ञान का एक मान्य ऐतिहासिक स्रोत है।

कृपया मूल प्रश्नों को पूछने के इस निमन्त्रण को स्वीकार करें जो यीशु के विषय में कुछ भी जानने के लिए पूछने आवश्यक हैं। आप विश्वासी हैं या नहीं, मेरे साथ बने रहें और देखें कि प्रमाण हमें कहां ले चलता है।